प्लेसिबो असर क्या चीज़ है?

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

दी इकॉनॉमिस्ट के हाल के एक अंक में ट्यूरिन के एक तंत्रिका वैज्ञानिक डॉ. फेब्रिज़िओ बेनेडेटी के शोध कार्य पर सामग्री प्रकाशित हुई है जिसका शीर्षक बहुत ही रोचक हैः 'हाऊ टु चीट विदाउट चीटिंग' अर्थात बगैर छल किए कैसे छलें।

यह शोध कार्य सुझाव, उम्मीद और प्लेसिबो की शक्ति का विवरण देता है। वालंटियर्स के चार समूह जुटाए गए जिन्हें कुछ एथलेटिक कार्य करना था। यह कार्य ऐसा था कि एक हद से ज़्यादा करने पर दर्द होना तय था। बेनेडेटी का शोध पत्र *जर्नल ऑफ न्यूरोसाइन्स* के अक्टूबर 2007 के अंक में प्रकाशित हुआ है।

वालंटियर्स के समूह 'क' - को किसी तरह का कोई उपचार प्रदान नहीं किया गया था - न तो अभ्यास सत्र के दौरान और न ही वास्तविक प्रतिस्पर्धा के दिन। समूह 'ख' की भी यही स्थिति थी ,मगर प्रतिस्पर्धा के दिन उन्हें *बताया* गया कि उन्हें मॉर्फीन दिया गया है ताकि उन्हें दर्द न हो और वे बेहतर प्रदर्शन कर सकें। वास्तव में उन्हें सिर्फ नमकीन पानी का इंजेक्शन दिया गया था। समूह 'ग' को पहले दो अभ्यास सत्रों में तो कुछ नहीं दिया गया मगर तीसरे सत्र में मॉर्फीन दिया गया और प्रतिस्पर्धा के दिन उन्हें वही नमकीन पानी प्लेसिबो के रूप दिया गया था जो समूह 'ख' को दिया गया था। समूह 'ग' के वालंटियर्स को भी बताया गया कि उन्हें मॉर्फीन दिया गया है।

समूह 'घ' के साथ भी वही सलूक किया गया जो समूह 'ग' के साथ किया गया था मगर प्रतिस्पर्धा के दिन उन्हें प्लेसिबो के साथ-साथ एक और दवाई नेलोक्सोन भी दी गई थी। उन्हें भी बताया गया था कि उन्हें दर्दनाशक-प्रदर्शन-वर्धक दवाई मॉर्फीन दी गई है। अलबत्ता उन्हें नेलोक्सोन के बारे में कुछ नहीं बताया गया था जो मॉर्फीन के असर को निरस्त कर देती है।

कुल मिलाकर इन समूहों के रूप में तुलना के लिए बढ़िया सेट बन जाते हैं। समूह 'क' कंट्रोल है जिसे कुछ नहीं दिया गया है। अब यदि समूह 'ख' का प्रदर्शन समूह 'क' से बेहतर रहता है, तो इसका श्रेय प्लेसिबो को दिया जाएगा। समूह 'ग' ने अभ्यास सत्रों के दौरान सचमुच मॉर्फीन के प्रदर्शन-वर्धक असर का अनुभव किया है और वे सोचते हैं कि प्रतिस्पर्धा के दिन भी उन्हें यही लाभ मिलने जा रहा है। उनका प्रदर्शन भी प्लेसिबो प्रभाव का द्योतक होगा। समूह 'घ' का प्रदर्शन वास्तव में समूह 'ग' से बदतर रहना चाहिए।

तो इस प्रतिस्पर्धा के परिणाम क्या रहे?

समूह 'क' ने अभ्यास सत्र और प्रतिस्पर्धा में 15-15 सेकंड तक दर्द सहन किया। समूह 'ख' का प्रदर्शन प्रतिस्पर्धा के दौरान थोड़ा बेहतर रहा - करीब 17 सेकंड। ऐसा लगता है कि मॉर्फीन दिए जाने की सूचना ने उन पर अनुकूल असर डाला था। समूह 'ग', जिसे अभ्यास सत्र के दौरान मॉर्फीन दिया गया था, का प्रदर्शन प्रतिस्पर्धा के दिन भी 21-22 सेकंड पर टिका रहा जबकि उस दिन उन्हें मात्र प्लेसिबो दिया गया था। दूसरी ओर प्रतिस्पर्धा के दिन समूह 'घ' का प्रदर्शन आम दिनों के 23 सेकंड से घटकर मात्र 15 सेकंड रह गया।

मॉर्फीन एक प्रदर्शन-वर्धक दवाई है और वर्ल्ड एंटी-डोपिंग एजेंसी खेलकूद प्रतिस्पर्धाओं के दौरान इसके उपयोग की अनुमति नहीं देती है। मगर मॉर्फीन और स्टीरॉइड्स जैसी औषधियों के बीच एक महत्वपूर्ण अंतर है। मॉर्फीन का असर अस्थाई होता है और चंद घण्टों तक ही रहता है। दूसरी ओर स्टीरॉइड्स मांसपेशियों के निर्माण में मदद देते हैं और ज़्यादा लंबे समय तक असर दिखाते हैं। एंटी-डोपिंग एजेंसी ने खिलाड़ियों द्वारा स्टीरॉइड्स के उपयोग पर पूरी तरह प्रतिबंध लगाया है मगर मॉर्फीन का उपयोग सिर्फ प्रतिस्पर्धा के दिन ही प्रतिबंधित है।

उपरोक्त शोध के मुखिया बेनेडेटी का सवाल हैः मेरे

प्रयोग में वालंटियर्स ने प्रतिस्पर्धा के दिन मॉर्फीन का उपयोग नहीं किया था, फिर भी उनका प्रदर्शन बेहतर रहा। तो क्या इस तरह के प्लेसिबो प्रभाव को डोपिंग कहेंगे?

क्या प्लेसिबो प्रभाव को खेलकूद प्रतियोगिताओं में नैतिक रूप से स्वीकार्य माना जा सकता है या क्या उन्हें भी एक तरह से डोपिंग माना जाना चाहिए?

प्लेसिबो का शब्दशः अर्थ होता है 'मैं खुश करूंगा, मैं उपयोगी रहूंगा'। प्लेसिबो ऐसा अक्रिय रसायन होता है जो किसी औषधि के एवज में दिया जाता है। लगता है कि इसके सेवन की क्रिया और इसके सेवन से मदद मिलने का सुझाव या उम्मीद ही प्रभाव पैदा करती है - पूरी तरह नहीं मगर काफी मात्रा में। यह अत्यंत शक्तिशाली मनोवैज्ञानिक असर पैदा करता है। कहते हैं कि यह दिमाग पर काम करता है और दिमाग के ज़रिए शरीर पर। डॉ. आरोन वैलेंस ने अपने एक ताज़ा शोध पत्र 'समथिंग आउट ऑफ नथिंगः दी प्लेसिबो इफेक्ट' में प्लेसिबो प्रभाव का एक समग्र व पठनीय ब्यौरा दिया है। उनका यह शोध पत्र *एडवांसेज़ इन सायकिएट्रिक ट्रीटमेंट* में प्रकाशित हुआ है तथा नेट पर मुफ्त उपलब्ध है।

प्लेसिबो असर दिमाग पर होते हैं, इसलिए ये बीमारी के वास्तविक क्रम को प्रभावित नहीं करते। हम दर्द को सहन कर जाते हैं, बुरे स्वाद को सहन कर जाते हैं, सारी खराबियों को सहन कर जाते हैं, तो इस उम्मीद में कि यह उपचार हमारे लिए अच्छा है।

डॉक्टर और तीमारदार का तसल्लीबख्श रवैया और मरीज़ को लेकर उनकी तहजीब आधी लड़ाई तो वैसे ही जीत लेते हैं। डॉ. बीचर, जिन्होंने 1955 में सबसे पहले प्लेसिबो प्रभाव का अध्ययन किया था, बताते हैं कि किसी भी दवा का 30 प्रतिशत असर तो वास्तव में प्लेसिबो प्रभाव ही होता है।

उन्होंने दर्शाया था कि मॉर्फीन की कमी होने पर सैलाइन के इंजेक्शन देने पर भी नाविकों को बेहतर महसूस होता था। यही बात बेनेडेटी ने 50 साल बाद फिर से खोजी है। प्लेसिबो प्रभाव चिरस्थाई नहीं होते; इनका फायदा क्षणिक ही होता है।

यह स्पष्ट नहीं है कि क्या सारी बीमारियों में प्लेसिबो से मदद मिलेगी। कोई भी दर्दनाक, असुविधाजनक या शरीर में घुसपैठ करने वाला उपचार प्लेसिबो प्रभाव को जन्म देता है या उसे बढ़ाता है। इसीलिए शायद प्लेसिबो प्रभाव का सबसे ज़्यादा असर कैंसर उपचार के मामले में दिखता है।

प्लेसिबो दुश्चिंता को कम करते हैं और उम्मीदों के सहारे काम करते हैं। कुछ डॉक्टर तो बताते हैं कि बड़ी गोलियां या रंग-बिरंगी गोलियां ज़्यादा असर पैदा करती हैं। कुछ मरीज़ थोड़े ज़्यादा संवेदनशील होते हैं और शायद हाइपोकॉण्ड्रिएक भी यानी बीमार रहने की चिंता से ग्रस्त। ऐसे मरीज़ों को प्लेसिबो से वे साइड प्रभाव भी महसूस होते हैं जो उन्हें मालूम हैंै कि वास्तविक दवाई से होते हैं। इस तरह के नकारात्मक प्रभाव को नोसिबो कहते हैं।

दी इकॉनॉमिस्ट सहित कई का मत है कि होम्योपैथी मूलतः प्लेसिबो प्रभाव के सहारे ही कारगर होती है। मैं सिर्फ इसका ज़िक्र कर रहा हूं, विचार नहीं कर रहा हूं।

प्लेसिबो प्रभाव के पीछे का जीव विज्ञान धीरे-धीरे स्पष्ट होता जा रहा है। न्यूयॉर्क के कोलंबिया विश्वविद्यालय के डॉ. टॉर डी. वेजर और उनके साथियों ने दर्शाया है कि प्लेसिबो के सेवन से वास्तव में मस्तिष्क के कुछ भागों से दर्द कम करने वाले रसायनों (ओपिऑइड्स) का स्राव होता है। ओपिऑइड्स नाम ओपियम यानी अफीम से बना है और ये दर्द निवारक होते हैं। इन्हें एण्डॉर्फिन भी कहते हैं जिसका अर्थ है शरीर में कुदरती तौर पर पाए जाने वाले मॉर्फीननुमा रसायन जो दर्द की अनुभूति को कम करते हैं। नैलोक्सोन जैसे कुछ पदार्थ एण्डॉर्फिन के जैविक असर को रोकते हैं, इसलिए ये दर्द निवारकनाशी कहलाते हैं।

प्लेसिबो इस बात का एक और प्रमाण है कि कैसे दिमाग का कोई विचार हमारी शारीरिक अनुभूतियों को प्रभावित कर सकता है। सकारात्मक सोच की ताकत को कम करके न आंकें। प्रसिद्ध दार्शनिक देकार्ते ने कहा थाः 'कोजिटो एर्गो सम' यानी मैं सोचता हूं, तो मैं हूं। कुछ लोगों ने इसे थोड़ा बदलकर यों प्रस्तुत किया हैः मैं सोचता हूं, तो मैं कर सकता हूं। ***(स्रोत फीचर्स)***